जैन दर्शनमें सर्वज्ञता

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः ।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥

—अमृतचन्द्र, पुरुषार्थसिद्धचुपाय १ ।

पृष्ठभूमि

भारतीय दर्शनोंमें चार्वाक और मीमांसक इन दो दर्शनोंको छोड़कर शेष सभी (न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त, बौद्ध और जैन) दर्शन सर्वज्ञताकी सम्भावना करते तथा युक्तियों द्वारा उसकी स्थापना करते हैं। साथ ही उसके सद्भावमें आगम-प्रमाण भी प्रचुर मात्रामें उपस्थित करते हैं।

चार्वाक दर्शनका दृष्टिकोण

चार्वाक दर्शनका दृष्टिकोण है कि 'यद्दृश्यते तदस्ति, यन्न दृश्यते तन्नास्ति'—इन्द्रियोंसे जो दिखे वह है और जो न दिखे वह नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार भूत-तत्त्व ही दिखाई देते हैं। अतः वे हैं। पर उनके अतिरिक्त कोई अतीन्द्रिय पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः वे नहीं हैं। सर्वज्ञता किसी भी पुरुषमें इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं है और अज्ञात पदार्थका स्वीकार उचित नहीं है। स्मरण रहे कि चार्वाक प्रत्यक्ष प्रमाणके अलावा अनुमानादि कोई प्रमाण नहीं मानते। इसलिए इस दर्शनमें अतीन्द्रिय सर्वज्ञकी सम्भावना नहीं है।

मीमांसक दर्शनका मन्तव्य

मीमांसकोंका मन्तव्य है कि धर्म, अधर्म, स्वर्ग, देवता, नरक, नारकी आदि अतीन्द्रिय पदार्थ हैं तो अवश्य, पर उनका ज्ञान वेदद्वारा ही संभव है, किसी पुरुषके द्वारा नहीं[१]। पुरुष रागादि दोषोंसे युक्त हैं और रागादि दोष पुरुषमात्रका स्वभाव हैं तथा वे किसी भी पुरुषसे सर्वथा दूर नहीं हो सकते। ऐसी हालतमें रागी-द्वेषी—अज्ञानी पुरुषोंके द्वारा उन धर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान संभव नहीं है। शवर स्वामी अपने शावर-भाष्य (१–१-५) में लिखते हैं :

'चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थमवगमयितुमलं नान्यत् किञ्चनेन्द्रियम् ।'

इससे विदित है कि मीमांसक दर्शन सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान चोदना (वेद) द्वारा स्वीकार करता है। किसी इन्द्रियके द्वारा उनका ज्ञान सम्भव नहीं मानता। शवर स्वामीके परवर्ती प्रकाण्ड विद्वान् भट्ट कुमारिल भी किसी पुरुषमें सर्वज्ञताकी सम्भावनाका अपने मीमांसाश्लोकवार्तिकमें विस्तारके साथ

---

१. तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि ।
न स्वर्ग-देवताऽपूर्व-प्रत्यक्षकरणे क्षमः ॥

—भट्ट कुमारिल, मीमांसाश्लोकवा० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरजोर खण्डन करते हैं[1]। पर वे इतना स्वीकार करते हैं कि हम केवल धर्मज्ञका अथवा धर्मज्ञताका निषेध करते हैं। यदि कोई पुरुष धर्मातिरिक्त अन्य सबको जानता है तो जाने, हमें कोई विरोध नहीं है।

धर्मज्ञत्व-निषेधस्तु केवलोऽत्रोपयुज्यते।
सर्वमन्यद्विजानंस्तु पुरुषः केन वार्यते।।
सर्वप्रमातृ-संबंधि-प्रत्यक्षादिनिवारणात् ।
केवलाऽऽगम-गम्यत्वं लप्स्यते पुण्य-पापयोः[2] ।।

किसी पुरुषको धर्मज्ञ न माननेमें कुमारिलका तर्क यह है कि पुरुषोंका अनुभव परस्पर विरुद्ध एवं बाधित देखा जाता है[3]। अतः वे उसके द्वारा धर्माधर्मका यथार्थ साक्षात्कार नहीं कर सकते। वेद नित्य, अपौरुषेय और त्रिकालाबाधित होनेसे उसका ही धर्माधर्मके मामलेमें प्रवेश है (धर्मे चोदनैव प्रमाणम्)। ध्यान रहे बौद्ध दर्शनमें बुद्धके अनुभव—योगिज्ञानको और जैन दर्शनमें अर्हत्के अनुभव—केवलज्ञानको धर्माधर्मका यथार्थ साक्षात्कारी बतलाया गया है। जान पड़ता है कि कुमारिलको इन दोनों दर्शनोंकी मान्यता (धर्माधर्मज्ञतास्वीकार)का निषेध करना इष्ट है। उन्हें त्रयीवित् मन्वादिका धर्माधर्मादिविषयक उपदेश मान्य

---

१. यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जतीयार्थदर्शनम्।
दृष्टं सम्प्रति लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ।।११२—सू० २
यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलंघनात्।
दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तिता ।।११४
येऽपि सातिशया दृष्टाः प्रज्ञा-मेधादिभिर्नराः।
स्तोकस्तोकान्तरत्वेन नत्वतीन्द्रियदर्शनात् ।।
प्राज्ञोऽपि हि नरः सूक्ष्मानर्थान् द्रष्टुं क्षमोऽपि सन्।
स्वजातीरनतिक्रमान्नतिशेते परान्नरान् ।।
एकशास्त्रविचारे तु दृश्यतेऽतिशयो महान्।
न तु शास्त्रान्तरज्ञानं तन्मात्रेणैव लभ्यते ।।
ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं बुद्धिः शब्दापशब्दयोः।
प्रकृष्यति न नक्षत्र-तिथि-ग्रहणनिर्णये ।।
ज्योतिर्विच्च प्रकृष्टोऽपि चन्द्रार्क-ग्रहणादिषु।
न भवत्यादिशब्दानां साधुत्वं ज्ञातुमर्हति ।।
दशहस्तान्तरे व्योम्नि यो नामोत्प्लुत्य गच्छति।
न योजनमसौ गन्तुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि ।।
तस्मादतिशयज्ञानैरतिदूरगतैरपि।
किंचिदेवाधिकं ज्ञातुं शक्यते न त्वतीन्द्रियम् ।।—अनन्तकीर्ति द्वारा बृहत्सर्वज्ञसिद्धिमें उद्धृत कारिकाएँ।

२. इन दो कारिकाओंमें पहली कारिकाको शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रहमें (३१२८ का०) और दोनोंको अनन्तकीर्तिने बृहत्सर्वज्ञसिद्धि (पृ० १३७) में उद्धृत किया है।

३. सुगतो यदि सर्वज्ञः कपिलो नेति का प्रमा।
तावुभौ यदि सर्वज्ञौ मतभेदः कथं तयोः ।।—अष्टस. पृ. ३, उद्धृत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, क्योंकि वे उसे वेद-प्रभव बतलाते हैं[1]। कुछ भी हो, वे किसी पुरुषको स्वयं धर्मज्ञ स्वीकार नहीं करते। वे मन्वादिको भी वेद द्वारा ही धर्माधर्मादिका ज्ञाता और उपदेष्टा मानते हैं।

बौद्ध दर्शनमें सर्वज्ञता

बौद्ध दर्शनमें अविद्या और तृष्णाके क्षयसे प्राप्त योगीके परम प्रकर्षजन्य अनुभव पर बल दिया गया हैं और उसे समस्त पदार्थोंका, जिनमें धर्माधर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ भी सम्मिलित हैं, साक्षात्कर्ता कहा गया है। दिङ्नाग आदि बौद्ध-चिन्तकोंने सूक्ष्मादि पदार्थोंके साक्षात्करणरूप अर्थमें सर्वज्ञताको निहित प्रतिपादन किया है। परन्तु बुद्धने स्वयं अपनी सर्वज्ञतापर बल नहीं दिया। उन्होंने कितने ही अतीन्द्रिय पदार्थोंको अव्याकृत (न कहने योग्य) कह कर उनके विषयमें मौन ही रखा[2]। पर उनका यह स्पष्ट उपदेश था कि धर्म जैसे अतीन्द्रिय पदार्थका साक्षात्कार या अनुभव हो सकता है। उसके लिए किसी धर्म-पुस्तककी शरणमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। बौद्ध तार्किक धर्मकीर्तिने भी बुद्धको धर्मज्ञ ही बतलाया है और सर्वज्ञताको मोक्षमार्गमें अनुपयोगी कहा है :

तस्मादनुष्ठानगतं ज्ञानमस्य विचार्यताम्।
कीट-संख्यापरिज्ञाने तस्य नः क्वोपयुज्यते ॥
हेयोपादेयतत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदकः।
यः प्रमाणमसाविष्टो न तु सर्वस्य वेदकः ॥

—धर्मकीर्ति, प्रमाणवा. ३१, ३२।

---

१. उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माधर्मादिगोचरः।
अन्यथा चोपपद्येत सर्वज्ञो यदि नाभवत् ॥
बुद्धादयो ह्यवेदज्ञास्तेषां वेदादसंभवः।
उपदेशः कृतोऽतस्तैर्व्यामोहादेव केवलात् ॥
येऽपि मन्वादयः सिद्धाः प्राधान्येन त्रयीविदाम्।
त्रयीविदाश्रितग्रन्थास्ते वेदप्रभवोक्तयः ॥
नरः कोऽप्यस्ति सर्वज्ञः स च सर्वज्ञ इत्यपि।
साधनं यत्प्रयुज्येत प्रतिज्ञामात्रमेव तत् ॥
सिसाधयिषितो योऽर्थः सोऽनया नाभिधीयते।
यस्तूच्यते न तत्सिद्धौ किंचिदस्ति प्रयोजनम् ॥
यदीयागमसत्यत्वसिद्धौ सर्वज्ञतेष्यते।
न सा सर्वज्ञसामान्यसिद्धिमात्रेण लभ्यते ॥
यावद्बुद्धो न सर्वज्ञस्तावत्तद्वचनं मृषा।
यत्र क्वचन सर्वज्ञे सिद्धे तत्सत्यता कुतः ॥
अन्यस्मिन्न हि सर्वज्ञे वचसोऽन्यस्य सत्यता।
सामानाधिकरण्ये हि तयोरंगांगिता भवेत् ॥
ये कारिकाएँ कुमारिलके नामसे अनन्तकीर्तिने बृ. स. सि. में उद्धृत की हैं।

२. देखिए, मज्झिमनिकाय २–२–३ के चूलमालुंक्य सूत्रका संवाद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मोक्षमार्गमें उपयोगी ज्ञानका ही विचार करना चाहिए। यदि कोई जगत्के कीड़े-मकोड़ोंकी संख्या को जानता है तो उससे हमें क्या लाभ ? अतः जो हेय और उपादेय तथा उनके उपायोंको जानता है वही हमारे लिए प्रमाण आप्त है, सबका जानने वाला नहीं।'

यहाँ उल्लेखनीय है कि कुमारिलने जहाँ धर्मज्ञका निषेध करके सर्वज्ञके सद्भावको इष्ट प्रकट किया है वहाँ धर्मकीर्तिने ठीक उसके विपरीत धर्मज्ञको सिद्ध कर सर्वज्ञका निषेध मान्य किया है। शान्तरक्षित और उनके शिष्य कमलशील बुद्धमें धर्मज्ञताके साथ ही सर्वज्ञताकी भी सिद्धि करते हैं[१]। पर वे भी धर्मज्ञता-को मुख्य और सर्वज्ञताको प्रासङ्गिक बतलाते हैं[२]। इस तरह हम बौद्ध दर्शनमें सर्वज्ञताकी सिद्धि देख कर भी, वस्तुतः उसका विशेष बल हेयोपादेयतत्त्वज्ञतापर ही है, ऐसा निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

न्याय-वैशेषिक दर्शनमें सर्वज्ञता

न्याय-वैशेषिक ईश्वरमें सर्वज्ञत्व माननेके अतिरिक्त दूसरे योगी आत्माओंमें भी उसे स्वीकार करते हैं[3]। परन्तु उनकी वह सर्वज्ञता अपवर्ग-प्राप्तिके बाद नष्ट हो जाती है, क्योंकि वह योग तथा आत्ममनः-संयोग-जन्य गुण अथवा अणिमा आदि ऋद्धियोंकी तरह एक विभूति मात्र है। मुक्तावस्थामें न आत्ममनः-संयोग रहता है और न योग। अतः ज्ञानादि गुणोंका उच्छेद हो जानेसे वहाँ सर्वज्ञता भी समाप्त हो जाती है। हाँ, वे ईश्वरकी सर्वज्ञता अवश्य अनादि-अनन्त मानते हैं।

सांख्य-योग दर्शनमें सर्वज्ञता

निरीश्वरवादी सांख्य प्रकृतिमें और ईश्वरवादी योग ईश्वरमें सर्वज्ञता स्वीकार करते हैं। सांख्य दर्शनका मन्तव्य है कि ज्ञान बुद्धितत्त्वका परिणाम है और बुद्धितत्त्व महत्तत्त्व और महत्तत्त्व प्रकृतिका परिणाम है। अतः सर्वज्ञता प्रकृतितत्त्वमें निहित है और वह अपवर्ग हो जानेपर समाप्त हो जाती। योगदर्शनका दृष्टिकोण है कि पुरुषविशेषरूप ईश्वरमें[४] नित्य सर्वज्ञता है और योगियोंकी सर्वज्ञता, जो सर्व विषयक 'तारक' विवेकज्ञान रूप है, अपवर्गके बाद नष्ट हो जाती है। अपवर्ग अवस्थामें पुरुष चैतन्यमात्र-में, जो ज्ञानसे भिन्न है, अवस्थित रहता है[५]। यह भी आवश्यक नहीं कि हर योगीको वह सर्वज्ञता प्राप्त हो। तात्पर्य यह कि योगदर्शनमें सर्वज्ञताकी सम्भावना तो की गई है, पर वह योगज विभूतिजन्य होनेसे अनादि-अनन्त नहीं है, केवल सादि-सान्त है।

---

१. स्वर्गापवर्गसम्प्राप्तिहेतुज्ञोऽस्तीति गम्यते।
साक्षान्न केवलं किन्तु सर्वज्ञोऽपि प्रतीयते॥—तत्त्व. सं. का. ३३०।

२. 'मुख्यं हि तावत् स्वर्गमोक्षसम्प्रापकहेतुज्ञत्वसाधनं भगवतोऽस्माभिः क्रियते। यत्पुनः अशेषार्थपरिज्ञातृत्व-साधनमस्य तत् प्रासङ्गिकम्।'—तत्त्व. सं. पृ. ८६३।

३. 'अस्मद्विशिष्टानां युक्तानां योगजधर्मानुगृहीतेन मनसा स्वात्मान्तराकाशदिक्कालपरमाणुवायुमनस्सु तत्समवेतगुणकर्मसामान्यविशेषसमवाये चावितथं स्वरूपदर्शनमुत्पद्यते, वियुक्तानां पुनः..........।'
—प्रशस्तपादभाष्य, पृ० १८७।

४. 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'—योगसूत्र।

५. 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'—योगसूत्र १–१–३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदान्त दर्शनमें सर्वज्ञता

वेदान्त दर्शनका मन्तव्य है कि सर्वज्ञता अन्तःकरणनिष्ठ है और वह जीवन्मुक्त दशा तक रहती है। उसके बाद वह छूट जाती है। उस समय जीवात्मा अविद्यासे मुक्त होकर विद्यारूप शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्ममय हो जाता है और सर्वज्ञता आत्मज्ञतामें विलीन हो जाती है। अथवा उसका अभाव हो जाता है।

जैन दर्शनमें सर्वज्ञता-विषयक विस्तृत विमर्श :

जैन दर्शनमें ज्ञानको आत्माका स्वरूप अथवा स्वाभाविक गुण माना गया है[१] और उसे स्व-पर प्रकाशक स्वीकार किया गया है[२]। यदि आत्माका स्वभाव ज्ञत्व (जानना) न हो तो वेदके द्वारा भी सूक्ष्मादि ज्ञेयोंका ज्ञान नहीं हो सकता। आचार्य अकलङ्कदेवने लिखा है[३] कि ऐसा कोई ज्ञेय नहीं, जो ज्ञस्वभाव आत्माके द्वारा जाना न जाय। किसी विषयमें अज्ञताका होना ज्ञानावरण तथा मोहादि दोषोंका कार्य है। जब ज्ञानके प्रतिबन्धक ज्ञानावरण तथा मोहादि दोषोंका क्षय हो जाता है तो बिना रुकावटके समस्त ज्ञेयोंका ज्ञान हुए बिना नहीं रह सकता। इसीको सर्वज्ञता कहा गया है। जैन मनीषियोंने प्रारम्भसे त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती अशेष पदार्थोंके प्रत्यक्ष ज्ञानके अर्थमें इस सर्वज्ञताको पर्यवसित माना है। आगम-ग्रन्थों एवं तर्क-ग्रन्थोंमें हमें सर्वत्र सर्वज्ञताका प्रतिपादन मिलता है। षट्खण्डागमसूत्रोंमें कहा गया है कि 'केवली भगवान् समस्त लोकों, समस्त जीवों और अन्य समस्त पदार्थोंको सर्वदा एक साथ जानते व देखते हैं।'[४] आचारांगसूत्रमें भी यही कथन किया गया है[५]। महान् चिन्तक और लेखक कुन्दकुन्दने भी लिखा है[६] कि 'आवरणोंके अभावसे उद्भूत केवलज्ञान वर्तमान, भूत, भविष्यत्, सूक्ष्म, व्यवहित आदि सब तरहके ज्ञेयोंको पूर्णरूपमें युगपत् जानता है। जो त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती सम्पूर्ण पदार्थोंको नहीं जानता वह अनन्त पर्यायों वाले एक द्रव्यको भी पूर्णतया नहीं जान सकता और जो अनन्त पर्याय वाले एक द्रव्यको नहीं जानता वह समस्त द्रव्योंको कैसे एक साथ जान सकता है? प्रसिद्ध विचारक भगवती आराधनाकार शिवार्य[७] और आवश्यकनिर्युक्तिकार भद्र-

---

१. 'उपयोगो लक्षणम्'—तत्त्वार्थसूत्र २–८।

२. 'णाणं सपरपयासयं'

३. 'न खलु ज्ञस्वभावस्य कश्चिदगोचरोऽस्ति यन्न क्रमेत, तत्स्वभावान्तरप्रतिषेधात्।'—अष्ट० श०, अष्ट० स० पृ० ४७।

४. 'सयं भयवं उप्पण्णणाणदरिसी....सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणदि पस्सदि विहरदि त्ति' —षट्खं० पयदि० सू० ७८।

५. 'से भगवं अरिहं जिणो केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी....सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे एवं च विहरइ।'—आचारांगसू० २–३।

६. जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइयं भणियं॥
जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तेकालिगे तिहुवणत्थे।
णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दव्वमेकं वा॥
दव्वं अणंतपज्जयमेक्कमणंताणि दव्वजादाणि।
ण विजाणदि जदि जुगवं कधं सो सव्वाणि जाणादि॥—प्रवचनसा० १–४७, ४८, ४९।

७. पस्सदि जाणदि य तहा तिण्णि वि काले सपज्जए सव्वे।
तह वा लोगमसेसं भयवं विगयमोहो॥—भ० आ० गा० २१४१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहु बड़े स्पष्ट और प्रांजल शब्दोंमें सर्वज्ञताका प्रबल समर्थन करते हुए कहते हैं कि 'वीतराग भगवान् तीनों कालों, अनन्त पर्यायोंसे सहित समस्त ज्ञेयों और समस्त लोकोंको युगपत् जानते व देखते हैं।'

आगमयुगके बाद जब हम तार्किक युगमें आते हैं तो हम स्वामी समन्तभद्र, सिद्धसेन, अकलङ्क, हरिभद्र, पात्रस्वामी, वीरसेन, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र प्रभृति जैन तार्किकोंको भी सर्वज्ञताका प्रबल समर्थन एवं उपपादन करते हुए पाते हैं। इनमें अनेक लेखकोंने तो सर्वज्ञताकी स्थापनामें महत्त्वपूर्ण स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखे हैं। उनमें समन्तभद्र (वि० सं० दूसरी, तीसरी शती) को आप्तमीमांसा, जिसे 'सर्वज्ञविशेष-परीक्षा कहा गया है,[1] अकलंकदेवकी सिद्धिविनिश्चयगत 'सर्वज्ञसिद्धि', विद्यानन्दकी आप्तपरीक्षा, अनन्तकीर्तिकी लघु व बृहत्सर्वज्ञसिद्धियाँ, वादीभसिंहकी स्याद्वादसिद्धिगत 'सर्वज्ञसिद्धि' आदि कितनी ही रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। यदि कहा जाय कि सर्वज्ञतापर जैन दार्शनिकोंने सबसे अधिक चिन्तन और साहित्य सृजन करके भारतीय दर्शनशास्त्रको समृद्ध बनाया है तो अत्युक्ति न होगी।

सर्वज्ञताकी स्थापनामें समन्तभद्रने जो युक्ति दी है वह बड़े महत्त्वकी है। वे कहते हैं कि सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ भी किसी पुरुषविशेषके प्रत्यक्ष है, क्योंकि वे अनुमेय हैं, जैसे अग्नि। उनकी वह युक्ति इस प्रकार है :—

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ-संस्थितिः॥

समन्तभद्र एक दूसरी युक्तिके द्वारा सर्वज्ञताके रोकने वाले अज्ञानादि दोषों और ज्ञानावरणादि आवरणोंका किसी आत्मविशेषमें अभाव सिद्ध करते हुए कहते हैं कि "किसी पुरुषविशेषमें ज्ञानके प्रतिबन्धकोंका पूर्णतया क्षय हो जाता है, क्योंकि उनकी अन्यत्र न्यूनाधिकता देखी जाती है। जैसे स्वर्णमें बाह्य और अन्तरंग दोनों प्रकारके मैलोंका अभाव दृष्टिगोचर होता है[2]। प्रतिबन्धकोंके हट जानेपर ज्ञस्वभाव आत्माके लिए कोई ज्ञेय अज्ञेय नहीं रहता। ज्ञेयोंका अज्ञान या तो आत्मामें उन सब ज्ञेयोंको जाननेकी सामर्थ्य न होनेपर होता है या ज्ञानके प्रतिबन्धकोंके रहनेसे होता है। चूँकि आत्मा ज्ञ है और तप, संयमादिकी आराधनाद्वारा प्रतिबन्धकोंका अभाव पूर्णतया सम्भव है। ऐसी स्थितिमें उस वीतराग महायोगीको कोई कारण नहीं कि अशेष ज्ञेयोंका ज्ञान न हो। अन्तमें इस सर्वज्ञताको अर्हत्में सम्भाव्य बतलाया गया है। उनका प्रतिपादन इस प्रकार है—

दोषावरणयोर्हानिर्निश्शेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः॥
स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते॥—आप्तमी० का० ५, ६।

---

१. संभिण्णं पासंतो लोगमलोगं च सव्वओ सव्वं।
तं णत्थि जं न पासइ भूयं भव्वं भविस्सं च॥—आवश्यकनि० गा० १२७।

२. यहाँ ध्यान देने योग्य है कि समन्तभद्रने आप्तके आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य तीन गुणों एवं विशेषताओंमें सर्वज्ञताको आप्तकी अनिवार्य विशेषता बतलायी है—उसके बिना वे उसमें आप्तता असम्भव बतलाते हैं :—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥ —रत्नकरण्डश्रा० श्लोक ५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समन्तभद्रके उत्तरवर्ती सूक्ष्म चिन्तक अकलंकदेवने सर्वज्ञताकी संभावनामें जो महत्त्वपूर्ण युक्तियाँ दी हैं वे भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। अकलंककी पहली युक्ति यह है कि आत्मामें समस्त पदार्थोंको जाननेकी सामर्थ्य है। इस सामर्थ्यके होनेसे ही कोई पुरुषविशेष वेदके द्वारा भी सूक्ष्मादि ज्ञेयोंको जाननेमें समर्थ हो सकता है, अन्यथा नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि संसारी-अवस्थामें ज्ञानावरणसे आवृत होनेके कारण ज्ञान सब ज्ञेयोंको नहीं जान पाता। जिस तरह हम लोगोंका ज्ञान सब ज्ञेयोंको नहीं जानता, कुछ सीमितोंको ही जान पाता है। पर जब ज्ञानके प्रतिबन्धक कर्मों (आवरणों) का पूर्ण क्षय हो जाता है तो उस विशिष्ट इन्द्रियानपेक्ष और आत्ममात्र सापेक्ष ज्ञानको, जो स्वयं अप्राप्यकारी भी है, समस्त ज्ञेयोंको जाननेमें क्या बाधा है[1] ?

उनकी दूसरी युक्ति यह है कि यदि पुरुषोंको धर्माधर्मादि अतीन्द्रिय ज्ञेयोंका ज्ञान न हो तो सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिर्ग्रहोंकी ग्रहण आदि भविष्यत् दशाओं और उनसे होनेवाला शुभाशुभका अविसंवादी उपदेश कैसे हो सकेगा ? इन्द्रियोंकी अपेक्षा किये बिना ही उनका अतीन्द्रियार्थविषयक उपदेश सत्य और यथार्थ स्पष्ट देखा जाता है। अथवा जिस तरह सत्य स्वप्न-दर्शन इन्द्रियादिकी सहायताके बिना ही भावी राज्यादि लाभका यथार्थ बोध कराता है उसी तरह सर्वज्ञका ज्ञान भी अतीन्द्रिय पदार्थोंमें संवादी और स्पष्ट होता है और उसमें इन्द्रियोंकी आंशिक भी सहायता नहीं होती। इन्द्रियाँ तो वास्तवमें कम ज्ञानको ही कराती हैं। वे अधिक और सर्वविषयक ज्ञानमें उसी तरह बाधक हैं जिस तरह सुन्दर प्रासादमें बनी हुई खिड़कियाँ अधिक प्रकाशको रोकती है।

अकलंककी तीसरी युक्ति यह है कि जिस प्रकार अणुपरिमाण बढ़ता–बढ़ता आकाशमें महापरिमाण या विभुत्वका रूप ले लेता है, क्योंकि उसकी तरतमता देखी जाती है, उसी तरह ज्ञानके प्रकर्षमें भी तारतम्य देखा जाता है। अतः जहाँ वह ज्ञान सम्पूर्ण अवस्था (निरतिशयपने) को प्राप्त हो जाता है वहीं सर्वज्ञता आ जाती है। इस सर्वज्ञताका किसी व्यक्ति या समाजने ठेका नहीं लिया। वह प्रत्येक योग्य साधकको प्राप्त हो सकती है।

उनकी चौथी युक्ति यह है कि सर्वज्ञताका कोई बाधक नहीं है। प्रत्यक्ष आदि पाँच प्रमाण तो इसलिए बाधक नहीं हो सकते, क्योंकि वे विधि (अस्तित्व) को विषय करते हैं। यदि वे सर्वज्ञताके विषयमें दखल दें तो उनसे सद्भाव ही सिद्ध होगा। मीमांसकोंका अभाव-प्रमाण भी उसका निषेध नहीं कर सकता, क्योंकि अभाव-प्रमाणके लिए यह आवश्यक है[2] कि जिसका अभाव करना है उसका स्मरण और जहाँ

१. कथञ्चित् स्वप्रदेशेषु स्यात्कर्म-पटलाच्छता।
संसारिणां तु जीवानां यत्र ते चक्षुरादयः॥
साक्षात्कर्तुं विरोधः, कः सर्वथाऽऽवरणात्यये।
सत्यमर्थं यथा सर्वं यथाऽभूद्वा भविष्यति॥
सर्वार्थग्रहणसामर्थ्याच्चैतन्यप्रतिबन्धिनाम्।
कर्मणां विगमे कस्मात् सर्वान्नर्थान् न पश्यति॥
ग्रहादिगतयः सर्वाः सुखःदुःखादिहेतवः।
येन साक्षात्कृतास्तेन किन्न साक्षात्कृतं जगत्॥
ज्ञस्यावरणविच्छेदे ज्ञेयं किमवशिष्यते।
अप्राप्यकारिणस्तस्मात्सर्वार्थावलोकनम्॥—न्यायविनिश्चय, का० ३६१, ६२, ४१०, ४१४, ४६५।

२. गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनाम्।
मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षया॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका अभाव करना है वहाँ उसका प्रत्यक्ष दर्शन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। जब हम भूतलमें घड़ेका अभाव करते हैं तो वहाँ पहले देखे गये घड़ेका स्मरण और भूतलका दर्शन होता है, तभी हम यह कहते हैं कि यहाँ घड़ा नहीं है। किन्तु तीनों (भूत, भविष्यत् और वर्तमान) कालों तथा तीनों (ऊर्ध्व, मध्य, और अधो) लोकोंके अतीत, अनागत और वर्तमानकालीन अनन्त पुरुषोंमें सर्वज्ञता नहीं थी, नहीं है और न होगी, इस प्रकारका ज्ञान उसीको हो सकता है जिसने उन तमाम पुरुषोंका साक्षात्कार किया हैं। यदि किसीने किया है तो वही सर्वज्ञ हो जायगा। साथ ही सर्वज्ञताका स्मरण सर्वज्ञताके प्रत्यक्ष अनुभवके बिना संभव नहीं और जिन त्रैकालिक और त्रिलोकवर्ती अनन्त पुरुषों (आधार) में सर्वज्ञताका अभाव करना है उनका प्रत्यक्ष दर्शन भी संभव नहीं। ऐसी स्थितिमें अभावप्रमाण भी सर्वज्ञताका बाधक नहीं है। इस तरह जब कोई बाधक नहीं है तो कोई कारण नहीं कि सर्वज्ञताका सद्भाव सिद्ध न हो[1]।

निष्कर्ष यह है कि आत्मा 'ज्ञ'—ज्ञाता है और उसके ज्ञानस्वभावको ढँकनेवाले आवरण दूर होते हैं। अतः आवरणोंके विच्छिन्न हो जानेपर ज्ञस्वभाव आत्माके लिए फिर शेष जानने योग्य क्या रह जाता है? अर्थात् कुछ भी नहीं। अप्राप्यकारी ज्ञानसे सकलार्थ विषयक ज्ञान होना अवश्यम्भावी है। इन्द्रियाँ और मन सकलार्थपरिज्ञानमें साधक न होकर बाधक हैं। वे जहाँ नहीं हैं और आवरणोंका पूर्णतः अभाव है वहाँ त्रैकालिक और त्रिलोकवर्ती यावज्ज्ञेयोंका साक्षात् ज्ञान होनेमें कोई बाधा नहीं है।

आ. वीरसेन[2] और आ. विद्यानन्द[3] ने भी इसी आशयका एक महत्त्वपूर्ण श्लोक प्रस्तुत करके उसके द्वारा ज्ञस्वभाव आत्मामें सर्वज्ञताकी सम्भावना की है। वह श्लोक यह है—

ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः स्यादसति प्रतिबन्धने।
दाह्येऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबन्धने॥

—जयधवला पृ० ६६, अष्टस. पृ० ५०।

अग्निमें दाहकता हो और दाह्य—ईंधन सामने हो तथा बीचमें रुकावट न हो तो अग्नि अपने दाह्य-को क्यों नहीं जलावेगी? ठीक उसी तरह आत्मा ज्ञ (ज्ञाता) हो, और ज्ञेय सामने हो तथा उनके बीचमें कोई रुकावट न रहे तो ज्ञाता उन ज्ञेयोंको क्यों नहीं जानेगा? आवरणोंके अभावमें ज्ञस्वभाव आत्माके लिए आसन्नता और दूरता ये दोनों भी निरर्थक हो जाती हैं।

उपसंहार :

जैन दर्शनमें प्रत्येक आत्मामें आवरणों और दोषोंके अभावमें सर्वज्ञताका होना अनिवार्य माना गया है। वेदान्त दर्शनमें मान्य आत्माकी सर्वज्ञतासे जैन दर्शनकी सर्वज्ञतामें यह अन्तर है कि जैन दर्शनमें सर्वज्ञताको आवृत करनेवाले आवरण और दोष मिथ्या नहीं है, जब कि वेदान्त दर्शनमें अविद्याको मिथ्या कहा गया है। इसके अलावा जैन दर्शनको सर्वज्ञता जहाँ सादि-अनन्त है और प्रत्येक मुक्त आत्मामें वह पृथक्-पृथक् विद्यमान रहती है अतएव अनन्त सर्वज्ञ हैं, वहाँ वेदान्तमें मुक्त-आत्माएँ अपने पृथक् अस्तित्वको न रखकर एक अद्वितीय सनातन ब्रह्ममें विलीन हो जाते हैं और उनकी सर्वज्ञता अन्तःकरणसंबन्ध तक रहती है, बादको वह नष्ट हो जाती है या ब्रह्ममें ही उसका समावेश हो जाता है। ●

---

१. 'अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वात्, सुखादिवत्।'—सिद्धिवि० वृ० ८-६ तथा अष्ट० स० का० ५।

२. विशेषके लिए वीरसेनकी जयधवला (पृ० ६४ से ६६) द्रष्टव्य है।

३. विद्यानन्दके आप्तपरीक्षा, अष्टसहस्री आदि ग्रन्थ देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org